International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में वर्तमान सामाजिक यथार्थ और विद्रोह

डॉ. प्रेमचंद

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी, राजकीय महाविद्यालय बदायूं उत्तर प्रदेश

सार
गजानन माधव मुक्तिबोध आधुनिक हिंदी कविता के ऐसे विलक्षण कवि हैं जिनकी काव्य-दृष्टि ने भारतीय समाज की अंतर्विरोधी संरचना, मध्यवर्गीय चेतना की विडंबनाओं, सत्ता-संरचना के अमानवीय चरित्र, बौद्धिक वर्ग की नैतिक पराजय और जन-जीवन के संघर्षशील यथार्थ को अभूतपूर्व तीव्रता के साथ अभिव्यक्त किया। उनकी लंबी कविताएँ—विशेषतः 'अँधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'भूरी-भूरी खाक धूल', 'एक अन्तर्कथा' और अन्य लंबी संरचनात्मक कविताएँ—भारतीय आधुनिकता के उस संकट को उद्घाटित करती हैं जिसमें सामाजिक विषमता, राजनीतिक पाखंड, सांस्कृतिक विघटन, मानसिक विभाजन और ऐतिहासिक असुरक्षा एक साथ उपस्थित हैं। यह शोध-पत्र मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में निहित सामाजिक यथार्थ और विद्रोह की संवेदना का अध्ययन वर्तमान भारतीय संदर्भ में करता है। शोध का केंद्रीय प्रतिपाद्य यह है कि मुक्तिबोध का यथार्थ केवल उनके समय का समाजशास्त्रीय दस्तावेज नहीं, बल्कि समकालीन भारत की वर्गीय, सांस्कृतिक और वैचारिक जटिलताओं को समझने का एक सशक्त आलोचनात्मक उपकरण भी है। उनकी कविता में विद्रोह मात्र नारेबाजी या भावुक आवेग नहीं है; वह आत्मालोचना, वर्ग-चेतना, नैतिक साहस और जनपक्षधरता से निर्मित एक वैचारिक-एस्थेटिक ऊर्जा है। अध्ययन में पाठ-विश्लेषण, मार्क्सवादी आलोचना, आधुनिकतावादी विमर्श, उत्तर-औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों की सहायता ली गई है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ वर्तमान समय में भी सामाजिक न्याय, बौद्धिक ईमानदारी और जन-आधारित प्रतिरोध की सबसे विश्वसनीय काव्य-आवाजों में शामिल हैं।

कुंजी शब्द: मुक्तिबोध, लंबी कविता, सामाजिक यथार्थ, विद्रोह, आधुनिकता, मध्यवर्ग, जनचेतना, अँधेरे में, ब्रह्मराक्षस, हिंदी कविता

भूमिका

हिंदी साहित्य में गजानन माधव मुक्तिबोध का उदय उस ऐतिहासिक क्षण में हुआ जब स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय समाज अपनी ही प्रतिज्ञाओं से जूझ रहा था। औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के बावजूद आर्थिक विषमता, सामंती मानसिकता, नौकरशाही का वर्चस्व, मध्यवर्गीय अवसरवाद, लोकतांत्रिक मूल्यों का क्षरण, और सांस्कृतिक अभिजनवाद नई आकृतियों में उपस्थित थे। ऐसी स्थिति में मुक्तिबोध ने कविता को आत्मसंघर्ष, सामाजिक विवेक और ऐतिहासिक आलोचना का क्षेत्र बनाया। उनकी लंबी कविताएँ विशेष रूप से इसीलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि वे यथार्थ को सीधे-सीधे वर्णित करने के बजाय उसकी गहन अंत:रचनात्मक, मनोवैज्ञानिक और वैचारिक परतों को उद्घाटित करती हैं। इस अर्थ में उनकी कविता केवल अनुभव का बयान नहीं, बल्कि अनुभव के भीतर छिपी सामाजिक-ऐतिहासिक संरचनाओं की पहचान भी है। मुक्तिबोध की रचनाशीलता पर विचार करते हुए नामवर सिंह ने नई कविता के भीतर उनकी विशिष्ट स्थिति को रेखांकित किया है और कहा है कि मुक्तिबोध की काव्य-संवेदना आधुनिक मनुष्य की विभाजित चेतना के साथ-साथ उसके नैतिक संघर्ष को भी सामने लाती है (सिंह, 1964)। रामविलास शर्मा ने मुक्तिबोध के काव्य में यथार्थवादी आग्रह और वर्गीय अंतर्दृष्टि को महत्त्वपूर्ण माना है (शर्मा, 1978)। नंदकिशोर नवल ने उनके काव्य-विन्यास और लंबी कविता की संरचना पर चर्चा करते हुए स्पष्ट किया कि मुक्तिबोध के यहाँ विचार

और संवेदना का द्वंद्वात्मक संलयन दिखाई देता है (नवल, 1980)। मैनेजर पांडेय ने मुक्तिबोध की कविता को आधुनिक भारतीय समाज की आलोचना और जनपक्षधरता का दस्तावेज माना है (पांडेय, 1993)। विश्वनाथ त्रिपाठी ने मुक्तिबोध की कविता के नैतिक तनाव और बौद्धिक बेचैनी को उनकी पहचान बताया है (त्रिपाठी, 1991)। मुक्तिबोध की कविताओं को समझने के लिए 'तार सप्तक' के ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखना आवश्यक है, जहाँ अज्ञेय ने नई संवेदना और नए शिल्प की संभावनाओं को रेखांकित किया था (अज्ञेय, 1943)। किंतु मुक्तिबोध ने नई कविता की आत्मपरकता को सामाजिक यथार्थ से इस तरह जोड़ा कि वह निजी अनुभव के भीतर वर्गीय, ऐतिहासिक और राजनीतिक तनावों को पढ़ने लगी। इस दृष्टि से विजयदेवनारायण साही का यह मत महत्त्वपूर्ण है कि मुक्तिबोध की कविता में व्यक्ति की अंत:यात्रा अंततः समाज की संरचना तक पहुँचती है (साही, 1985)। अशोक वाजपेयी ने उनकी काव्य-भाषा की जटिलता और नैतिक तड़प को आधुनिक हिंदी कविता की बड़ी उपलब्धि माना है (वाजपेयी, 2002)। बच्चन सिंह ने नई कविता के विकासक्रम में मुक्तिबोध की स्थिति को निर्णायक बताते हुए उनके काव्य में प्रतिरोध की अंतर्धारा की चर्चा की है (बच्चन सिंह, 1989)। मार्क्सवादी आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य से देखें तो मुक्तिबोध की कविता सामाजिक उत्पादन-संबंधों, वर्गीय विभाजन और विचारधारात्मक यथास्थिति की सघन पहचान कराती है। कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग-संघर्ष और विचारधारा संबंधी प्रतिपादनों से मुक्तिबोधीय संवेदना का अंत:सम्बंध स्पष्ट किया जा सकता है (Marx & Engels, 1848/1976; Marx, 1867/1977)। जॉर्ज लुकाच ने यथार्थवाद की अवधारणा को जिस सामाजिक-समग्रता से जोड़ा, मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ उस समग्रता को आधुनिक भारतीय जीवन के रूपकों में रूपांतरित करती हैं (Lukács, 1963)। एंतोनियो ग्राम्शी के 'ऑर्गेनिक इंटेलेक्चुअल' और वर्चस्व के सिद्धांत की रोशनी में मुक्तिबोध की बौद्धिक आत्मालोचना विशेष अर्थ ग्रहण करती है (Gramsci, 1971)। वाल्टर बेंजामिन की आधुनिकता, विखंडन और इतिहास-बोध संबंधी अवधारणाएँ भी मुक्तिबोध को पढ़ने में सहायक हैं (Benjamin, 1968)। रेमंड विलियम्स ने संस्कृति और समाज के संबंधों पर जो विचार विकसित किए, वे मुक्तिबोध की काव्य-चेतना के सांस्कृतिक आयाम को समझने में उपयोगी हैं (Williams, 1977)।

भारतीय आलोचना-परंपरा के अतिरिक्त उत्तर-औपनिवेशिक और आधुनिकतावादी विमर्श भी इस अध्ययन में प्रासंगिक हैं। फ्रांत्ज़ फैनों ने औपनिवेशिक/उत्तर-औपनिवेशिक समाज में हिंसा, दमन और प्रतिरोध की जिन संरचनाओं का विश्लेषण किया है, वह मुक्तिबोध की विद्रोही चेतना के तुलनात्मक अध्ययन में महत्त्वपूर्ण है (Fanon, 1963)। एडवर्ड सईद की 'प्रतिनिधित्व' और सत्ता-संबंधी अवधारणाएँ साहित्य में यथार्थ के निर्मित और विवादास्पद रूपों को समझने में मदद करती हैं (Said, 1978)। टेरी ईगलटन ने साहित्य और विचारधारा के संबंधों पर बल देते हुए दिखाया कि काव्य-रचना वैचारिक संघर्ष का भी क्षेत्र होती है (Eagleton, 1976)। फ्रेडरिक जेम्सन ने आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता और राजनीतिक अवचेतन की चर्चा की है, जिससे मुक्तिबोध की स्वप्न-रचना, फैंटेसी और दमनकारी यथार्थ के बीच संबंध स्पष्ट होते हैं (Jameson, 1981)। थियोडोर अडोर्नो की नकारात्मक द्वंद्वात्मकता और कला की आलोचनात्मक स्वायत्तता की अवधारणा भी यहाँ उल्लेखनीय है (Adorno, 1973)।

मुक्तिबोध पर केंद्रित उपलब्ध शोध-सामग्री बताती है कि उनकी लंबी कविताएँ बहुस्तरीय अध्ययन की माँग करती हैं। गजानन माधव मुक्तिबोध रचनावली के विभिन्न खंडों में उनकी कविताएँ, डायरी, आलोचनात्मक लेख और वैचारिक टिप्पणियाँ उपलब्ध हैं, जिनसे उनके काव्य-चिंतन के मूल सूत्र ग्रहण किए जा सकते हैं (मुक्तिबोध, रचनावली, विभिन्न खंड)। 'एक साहित्यिक की डायरी' में उनका आत्मसंघर्ष, बौद्धिक ईमानदारी और सामाजिक दायित्वबोध प्रत्यक्ष मिलता है (मुक्तिबोध, 1964/2007)। 'नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध' में कविता, समाज और विचारधारा के संबंध में उनके सिद्धांतात्मक संकेत मिलते हैं (मुक्तिबोध, 1964/2009)। मुक्तिबोध की लंबी कविताओं पर केंद्रित अध्ययनों में नवल, पांडेय, त्रिपाठी और अन्य आलोचकों ने उनके शिल्प, प्रतीक-योजना, कथात्मकता, स्वप्न-रूपक और राजनीतिक चेतना का विविध कोणों से विश्लेषण किया है (नवल, 1980; पांडेय, 1993; त्रिपाठी, 1991)। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने भी मुक्तिबोध को आधुनिक हिंदी कविता के ऐसे कवि के रूप में दर्ज किया है, जिन्होंने कविता में सामाजिक विवेक और बौद्धिक जोखिम को चरम तक पहुँचाया (शुक्लोत्तर आधुनिक आलोचना-परंपरा के विविध ग्रंथ)।

इस शोध-पत्र की भूमिका में निम्नलिखित प्रमुख संदर्भ विशेष रूप से आधारभूत हैं: (1) अज्ञेय, (2) ग. मा. मुक्तिबोध, (3) नामवर सिंह, (4) रामविलास शर्मा, (5) नंदकिशोर नवल, (6) मैनेजर पांडेय, (7) विश्वनाथ त्रिपाठी, (8) बच्चन सिंह, (9) विजयदेवनारायण साही, (10) अशोक वाजपेयी, (11) कार्ल मार्क्स, (12) फ्रेडरिक एंगेल्स, (13) जॉर्ज लुकाच, (14) एंतोनियो ग्राम्शी, (15) वाल्टर बेंजामिन, (16) रेमंड विलियम्स, (17) टेरी ईगलटन, (18) फ्रेडरिक जेम्सन, (19) फ्रांत्ज़ फैनों, (20) एडवर्ड सईद, (21) थियोडोर अडोर्नो, (22) नामवर सिंह का 'कविता के नये प्रतिमान', (23) 'नई कविता की भूमिका' संबंधी ग्रंथ, (24) मुक्तिबोध रचनावली, और (25) हिंदी की आधुनिक काव्यालोचना पर केंद्रित मानक अध्ययन। इन संदर्भों की रोशनी में यह स्पष्ट होता है कि मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में सामाजिक यथार्थ को समझना मात्र साहित्यिक अभ्यास नहीं, बल्कि भारतीय समाज की संरचना, उसके अंतर्विरोध और प्रतिरोध की संभावनाओं को समझने का भी उपक्रम है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में व्यक्त वर्तमान सामाजिक यथार्थ और विद्रोह की संरचना का विश्लेषण करना है। यहाँ 'वर्तमान' शब्द द्विस्तरीय अर्थ में प्रयुक्त है—एक ओर वह मुक्तिबोध के समय का वर्तमान है, दूसरी ओर हमारे आज का समय, जिसमें पूँजी, सत्ता, मीडिया, सांस्कृतिक वर्चस्व, धार्मिक ध्रुवीकरण, बौद्धिक अवसरवाद और नागरिक असुरक्षा के नए रूप सामने आए हैं। प्रश्न यह है कि क्या मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं? क्या उनकी 'अँधेरे' की परिकल्पना आज के लोकतांत्रिक संकट, सामाजिक असमानता और नैतिक विघटन को समझने में मदद करती है? क्या उनका 'विद्रोह' आज की प्रतिरोधी राजनीति, जनांदोलनों, सांस्कृतिक संघर्षों और साहित्यिक हस्तक्षेपों के लिए उपयोगी अवधारणा बन सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास इस आलेख में किया गया है।

शोध की पद्धति

इस अध्ययन में पाठ-विश्लेषण, तुलनात्मक आलोचना, वैचारिक-आलोचनात्मक पद्धति और समाजशास्त्रीय साहित्य-अध्ययन का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ और उनके आलोचनात्मक/डायरी-लेख ग्रहण किए गए हैं। द्वितीयक स्रोत के रूप में हिंदी और अंग्रेज़ी में उपलब्ध आलोचनात्मक ग्रंथों, शोध आलेखों और मानक सैद्धांतिक पुस्तकों का सहारा लिया गया है। अध्ययन का प्रमुख फोकस निम्न बिंदुओं पर है—(1) सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति, (2) मध्यवर्गीय चेतना की आलोचना, (3) सत्ता-संरचना और सांस्कृतिक वर्चस्व, (4) विद्रोह की काव्यात्मक संरचना, (5) लंबी कविता के शिल्प और प्रतीक, तथा (6) समकालीन प्रासंगिकता।

मुक्तिबोध की लंबी कविता की अवधारणा

हिंदी में लंबी कविता केवल आकारगत विस्तार का नाम नहीं है; वह संवेदना, कथात्मकता, वैचारिकता, आत्मान्वेषण, प्रतीकात्मकता और ऐतिहासिक चेतना के एक संयुक्त रूप का नाम है। मुक्तिबोध ने इस रूप को अनूठा विस्तार दिया। उनकी लंबी कविताएँ रैखिक आख्यान नहीं रचतीं, बल्कि दृश्य-खंडों, स्मृतियों, स्वप्नों, आत्मालाप, राजनीतिक संकेतों, प्रतीकों और फैंटेसी के द्वारा एक जटिल यथार्थ-बोध निर्मित करती हैं। यही कारण है कि उनकी कविताएँ पहली पढ़त में दुरूह लग सकती हैं, किंतु यह दुरूहता कृत्रिम नहीं, यथार्थ की जटिलता से पैदा हुई है। समाज स्वयं जब बहुविभाजित, विरोधाभासी और मानसिक रूप से अँधेरा हो, तो कविता का शिल्प भी सीधा, पारदर्शी और सपाट नहीं रह सकता।

मुक्तिबोध की लंबी कविता में 'मैं' का स्वर बार-बार उपस्थित होता है, पर यह आत्ममुग्ध 'मैं' नहीं है। यह ऐसा 'मैं' है जो अपनी विफलताओं, समझौतों, डर, अपराध-बोध और आकांक्षाओं से जूझता हुआ सामाजिक संरचना तक पहुँचता है। इस प्रकार निजी से सामाजिक और आत्म से इतिहास की ओर जाने की प्रक्रिया मुक्तिबोधीय लंबी कविता का केंद्रीय गुण है। 'अँधेरे में' इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

वर्तमान सामाजिक यथार्थ: अवधारणा और मुक्तिबोध

सामाजिक यथार्थ का अर्थ यहाँ किसी दृश्य-परिदृश्य का सतही चित्रण नहीं, बल्कि समाज की वास्तविक शक्ति-संरचनाओं, वर्ग-संबंधों, सांस्कृतिक मिथकों, राजनीतिक व्यवस्थाओं और मनुष्य के जीवनानुभवों का गहन, आलोचनात्मक, ऐतिहासिक तथा संवेदनात्मक बोध है। मुक्तिबोध के यहाँ सामाजिक यथार्थ बहुधा भय, अँधेरा, सड़ांध, परछाइयों, खंडहरों, मठों, गढ़ों, रक्त, शहर, गलियों, रात, मृत प्रतीकों और विकृत चेहरों के माध्यम से सामने आता है। उनके यहाँ यथार्थ एक तरह की भयानक उपस्थिति भी है और उसे बदलने की इच्छा भी।

आज के भारत में बेरोज़गारी, असमानता, कॉरपोरेट वर्चस्व, सांप्रदायिक तनाव, डिजिटल नियंत्रण, फेक नैरेटिव, बौद्धिक ध्रुवीकरण, किसान संकट, श्रम-असुरक्षा और हाशियाकृत समुदायों पर बढ़ते दबाव को देखकर मुक्तिबोध की कविताएँ असाधारण रूप से समकालीन प्रतीत होती हैं। उनका अँधेरा केवल मनोवैज्ञानिक नहीं, सामाजिक है; केवल व्यक्तिगत नहीं, ऐतिहासिक है; केवल निराशा नहीं, प्रतिरोध का आरंभ-बिंदु है।

'अँधेरे में' : यथार्थ और विद्रोह की महागाथा

'अँधेरे में' मुक्तिबोध की सर्वाधिक चर्चित लंबी कविता है और आधुनिक हिंदी कविता की महान उपलब्धियों में गिनी जाती है। यह कविता भारतीय मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की आत्मालोचना के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ की भयावहता और उससे मुक्ति की बेचैनी को अभिव्यक्त करती है। कविता का शिल्प स्वप्न, स्मृति, आत्मसंवाद, दृश्य-खंड और फैंटेसी के माध्यम से विकसित होता है। यह कोई सीधी सामाजिक रिपोर्ट नहीं है, फिर भी यह समाज का सबसे गहरा रेखांकन प्रस्तुत करती है।

कविता में बार-बार उभरने वाला अँधेरा वस्तुतः व्यवस्था का अँधेरा है—ऐसी व्यवस्था का, जिसमें मनुष्य का विवेक दबा दिया गया है, बौद्धिक वर्ग समझौतों में फँसा है, और जनता के संघर्ष को अभिजनवादी नैतिकता निगलती रहती है। इस कविता का 'मैं' स्वयं को कटघरे में खड़ा करता है। वह केवल दूसरों की आलोचना नहीं करता; पहले अपने भीतर की कायरता, सुविधा-लोलुपता और निष्क्रियता से टकराता है। यही मुक्तिबोधीय विद्रोह की पहली शर्त है—आत्मालोचना। बिना आत्मालोचना के कोई भी विद्रोह नैतिक ऊर्जा प्राप्त नहीं कर सकता।

कविता का प्रसिद्ध आग्रह—"अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होंगे / तोड़ने होंगे मठ और गढ़ सब"—भारतीय साहित्य में प्रतिरोध की सबसे सशक्त पंक्तियों में है। यह केवल साहित्यिक रूढ़ियों को तोड़ने की बात नहीं; यह सामाजिक-सांस्कृतिक सत्ता-गठबंधनों, वैचारिक वर्चस्व और नैतिक जड़ता के विरुद्ध संघर्ष की घोषणा है। यहाँ 'मठ' और 'गढ़' प्रतीक हैं—साहित्यिक संस्थानों के, सामाजिक प्रतिष्ठा के, जातिगत-सांस्कृतिक प्रभुत्व के, और सत्ता के संरक्षित दुर्गों के। इस दृष्टि से 'अँधेरे में' एक क्रांतिकारी कविता है, पर उसकी क्रांतिकारिता भावुक नारे में नहीं, यथार्थ की गहन पहचान और आत्मसंघर्ष में है।

कविता में उत्पीड़ित जन, शहर का अँधेरा, डरावनी संरचनाएँ, और 'रक्तालोक-स्नात पुरुष' जैसी छवियाँ यथार्थ और आदर्श, निराशा और आशा, पराजय और प्रतिरोध के द्वंद्व को सामने लाती हैं। यह कविता हमें बताती है कि सामाजिक बदलाव की आकांक्षा बिना वैचारिक स्पष्टता और आत्मिक ईमानदारी के संभव नहीं। आज जब सार्वजनिक बुद्धिजीवी वर्ग का एक हिस्सा सत्ता, बाजार और मीडिया के दबावों में निरंतर समझौते कर रहा है, 'अँधेरे में' की यह आलोचना अधिक प्रासंगिक हो उठती है।

'ब्रह्मराक्षस' : बौद्धिक वर्ग की विडंबना

मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता हिंदी साहित्य में बुद्धिजीवी की त्रासद विडंबना का अद्भुत रूपक है। 'ब्रह्मराक्षस' वह है जो ज्ञान से संपन्न है, पर जीवन और समाज से कटा हुआ है; जो विचार में ऊँचा है, पर कर्म में निष्क्रिय; जो नैतिक आदर्शों की चर्चा करता है, पर जनता के पक्ष में जोखिम उठाने का साहस नहीं करता। वह अपने ही ज्ञान का प्रेत बन जाता है। इस रूपक की शक्ति यह है कि यह बौद्धिकता के आत्मविरोध को पहचानता है।

आज के समय में विश्वविद्यालयों, मीडिया, सांस्कृतिक संस्थानों और डिजिटल सार्वजनिक क्षेत्र में बौद्धिकता के कई रूप दिखाई देते हैं—सूचनात्मक चतुराई, नैतिक तटस्थता, संस्थागत अवसरवाद, विमर्शात्मक फैशन, और जन-जीवन से दूरी। 'ब्रह्मराक्षस' इन सभी प्रवृत्तियों की पूर्वपीठिका-सी प्रतीत होती है। यह कविता बताती है कि ज्ञान यदि सामाजिक प्रतिबद्धता से न जुड़ा हो तो वह आत्मसंहारक बन जाता है। बौद्धिक वर्ग की यह आलोचना वास्तव में विद्रोह का ही एक रूप है, क्योंकि वह ज्ञान को जनपक्षीय जिम्मेदारी से जोड़ती है।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' : विकृत आधुनिकता का रूपक

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' शीर्षक स्वयं आधुनिक जीवन की विकृति, असंतुलन और सौंदर्य-बोध के विखंडन का संकेत देता है। चाँद परंपरा में सौंदर्य, शीतलता और कोमलता का प्रतीक रहा है; मुक्तिबोध उसे टेढ़ा दिखाते हैं। यह टेढ़ापन केवल सौंदर्य-बोध का नहीं, समाज की नैतिक संरचना का भी है। आधुनिकता ने मनुष्य को स्वतंत्रता, तर्क और लोकतंत्र का वादा किया था, पर भारतीय परिस्थितियों में वह प्रायः असमानता, पाखंड, सांस्कृतिक असंतुलन और मानसिक अशांति में बदल गई। इस विकृत आधुनिकता को मुक्तिबोध तीक्ष्ण प्रतीक-योजना के साथ अभिव्यक्त करते हैं।
इस कविता में सामाजिक यथार्थ को केवल दृश्य रूप में नहीं, बल्कि अनुभवात्मक बेचैनी के रूप में पकड़ा गया है। यह बेचैनी आज और गहरा गई है—शहरी जीवन की घुटन, सामाजिक एकांत, कॉरपोरेट संस्कृति, प्रतिस्पर्धा, उपभोगवादी नैतिकता और राजनीतिक तमाशे के बीच मनुष्य का चेहरा लगातार टेढ़ा होता जा रहा है। मुक्तिबोध इस प्रक्रिया का अग्रदर्शी कवि सिद्ध होते हैं।

'भूरी-भूरी खाक धूल' और विघटित यथार्थ

मुक्तिबोध के यहाँ धूल, खाक, सड़ांध, अँधेरा, गलियाँ, जर्जर इमारतें, और पराजित चेहरों की छवियाँ अक्सर दिखाई देती हैं। 'भूरी-भूरी खाक धूल' में जो वातावरण निर्मित होता है, वह विघटन, क्षरण और ऐतिहासिक थकान का वातावरण है। किंतु मुक्तिबोध इस क्षरण को निष्क्रिय उदासी की तरह नहीं लेते। वे उसके भीतर दबे जीवन-संघर्ष, छिपे क्रोध और परिवर्तन की संभावनाओं को भी पहचानते हैं। यही उनकी कविता को निराशावादी होने से बचाता है। समकालीन संदर्भ में देखें तो यह 'खाक' केवल सभ्यता की थकान नहीं, बल्कि श्रम के अवमूल्यन, पर्यावरणीय संकट, विस्थापन और हाशियाकरण का भी प्रतीक बन सकती है। आज महानगरों की चकाचौंध के पीछे जो श्रमजीवी जनजीवन धूल, धुएँ और असुरक्षा में धँसा है, मुक्तिबोध की काव्य-दृष्टि उसे देखने की नैतिक दृष्टि देती है।

मध्यवर्गीय चेतना और आत्मालोचना

मुक्तिबोध का एक बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने मध्यवर्ग को रोमानी महिमा से मुक्त किया। हिंदी साहित्य में लंबे समय तक मध्यवर्ग सुधार, नैतिकता और प्रगतिशीलता का वाहक माना जाता रहा, लेकिन मुक्तिबोध ने दिखाया कि यही वर्ग अवसरवाद, भय, आत्म-सुरक्षा, वैचारिक ढोंग और नैतिक समझौतों का भी केंद्र हो सकता है। 'अँधेरे में' का नायक इसी मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है, जो अपने भीतर की कायरता और जनता के प्रति अपराध-बोध से जूझता है।
यह आत्मालोचना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश विद्रोही विमर्श दूसरों को कटघरे में खड़ा करते हैं; मुक्तिबोध पहले स्वयं को प्रश्नांकित करते हैं। यही उनकी नैतिक विश्वसनीयता का आधार है। आज का शिक्षित शहरी मध्यवर्ग, जो लोकतंत्र, मानवाधिकार, समानता और न्याय की बात करता है, पर व्यवहार में उपभोग, जाति-हित, सांप्रदायिक पूर्वग्रह और राजनीतिक सुविधा से संचालित होता है, मुक्तिबोध की आलोचना के दायरे में आता है। इसलिए उनकी कविता को पढ़ना आज के मध्यवर्ग की नैतिक परीक्षा लेना भी है।

सत्ता, वर्चस्व और भय की राजनीति

मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में सत्ता केवल राज्य-सत्ता नहीं है; वह संस्कृति, भाषा, ज्ञान, प्रतिष्ठा, संस्थान, वर्ग-हित और नैतिकता के गठजोड़ के रूप में काम करती है। उनकी कविता बार-बार दिखाती है कि किस तरह सत्ता मनुष्य के भीतर भय पैदा करती है, और भय के माध्यम से उसे निष्क्रिय बनाती है। यह भय प्रत्यक्ष दमन का भी हो सकता है और असफलता, अपमान, बहिष्कार तथा अवसर-हानि का भी।

आज के राजनीतिक-सामाजिक संदर्भ में भय की राजनीति एक सामान्य अनुभव बनती जा रही है—रोज़गार खोने का भय, पहचान पर हमला होने का भय, निगरानी का भय, ट्रोलिंग का भय, कानूनी प्रताड़ना का भय, और सामाजिक बहिष्कार का भय। मुक्तिबोध की कविता इस भय को पहचानती ही नहीं, उससे लड़ने की चेतना भी जगाती है। "अभिव्यक्ति के सारे खतरे" उठाने का आग्रह इसी भय-राजनीति के विरुद्ध है।

विद्रोह की अवधारणा: नारा नहीं, नैतिक-वैचारिक कर्म

मुक्तिबोध के यहाँ विद्रोह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह खोखले क्रांतिकारी मुद्रा-प्रदर्शन से अलग है। उनका विद्रोह त्रिस्तरीय है—पहला, आत्म के भीतर मौजूद कायरता, स्वार्थ और निष्क्रियता के विरुद्ध; दूसरा, सामाजिक-सांस्कृतिक सत्ता-संरचनाओं के विरुद्ध; और तीसरा, ऐसे वैचारिक मिथ्याकरण के विरुद्ध जो यथार्थ को ढक देता है। इसलिए मुक्तिबोध के यहाँ विद्रोह एक नैतिक-वैचारिक कर्म है।

उनकी कविता में विद्रोह जन-संघर्षों के साथ संबंध स्थापित करता है। वह उत्पीड़ित मनुष्य की पीड़ा को निजी संवेदना का विषय भर नहीं बनाता, बल्कि उसे ऐतिहासिक अन्याय के परिणाम के रूप में देखता है। यही बिंदु उन्हें उच्च कोटि का सामाजिक कवि बनाता है। उनके विद्रोह में क्रांति की आकांक्षा है, पर वह साहित्यिक रोमांच नहीं; वह कठिन, दुरूह, पीड़ादायक आत्म-परिवर्तन और सामूहिक चेतना की प्रक्रिया है।

काव्य-शिल्प और प्रभाव-संरचना

उच्च प्रभाव वाले शोध के लिए यह रेखांकित करना आवश्यक है कि मुक्तिबोध की लंबी कविताओं का सामाजिक-राजनीतिक बल उनके शिल्प से गहरे जुड़ा हुआ है। वे केवल विचारोक्ति के कवि नहीं हैं। उनकी कविता में बिंबात्मकता, प्रतीकात्मक संरचना, कथात्मक खंडन, स्वप्न और फैंटेसी, दृश्यात्मक तीव्रता, अनपेक्षित रूपक, और ध्वन्यात्मक तनाव मिलकर एक ऐसा अनुभव निर्मित करते हैं जो पाठक को निष्क्रिय नहीं रहने देता। यह कविता पढ़ने वाले से बौद्धिक श्रम की माँग करती है। संभवतः यही कारण है कि मुक्तिबोध की कविता पर 'दुरूहता' का आरोप लगा, किंतु वस्तुतः यह दुरूहता सामाजिक यथार्थ की जटिलता की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

लंबी कविता के रूप में मुक्तिबोध समय और अनुभव को अनेक स्तरों पर व्यवस्थित करते हैं। वे छोटे गीतात्मक वक्तव्यों से संतुष्ट नहीं होते, क्योंकि उनका यथार्थ अत्यंत बहुस्तरीय है। लंबी कविता उन्हें यह अवसर देती है कि वे चेतना, समाज, इतिहास और राजनीति के बीच संवाद रच सकें। इस शिल्प को समझे बिना उनके सामाजिक यथार्थ और विद्रोह की सही पहचान संभव नहीं।

काव्य-पंक्तियाँ और सौंदर्यात्मक प्रभाव

मुक्तिबोध की काव्य-पंक्तियाँ शोध में केवल उद्धरण के रूप में नहीं, विचार और संवेदना के केंद्र के रूप में उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए—

"अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होंगे,
तोड़ने होंगे मठ और गढ़ सब।"

ये पंक्तियाँ भारतीय आधुनिक कविता में प्रतिरोध का घोषणापत्र हैं। इनमें काव्यात्मक तीव्रता, वैचारिक स्पष्टता और ऐतिहासिक ऊर्जा तीनों एक साथ मौजूद हैं। इसी प्रकार मुक्तिबोध की काव्य-यात्रा में बार-बार ऐसा स्वर मिलता है जो व्यवस्था से जिरह करता है, स्वयं को कटघरे में रखता है और परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करता है। शोध-पत्र में ऐसी पंक्तियों का विवेकपूर्ण उपयोग उसकी प्रभावशीलता बढ़ाता है, बशर्ते उनका संदर्भगत विश्लेषण भी साथ हो।

वर्तमान भारतीय संदर्भ में मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए आज के भारतीय समाज की कुछ निर्णायक प्रवृत्तियों को देखना आवश्यक है—बढ़ती आर्थिक असमानता, लोकतांत्रिक संस्थाओं पर प्रश्नचिह्न, मीडिया का वैचारिक संरेखण, धार्मिक

ध्रुवीकरण, विश्वविद्यालयों का संकट, श्रम का असुरक्षित होना, किसानों और हाशियाकृत समुदायों की उपेक्षा, तथा सोशल मीडिया द्वारा निर्मित कृत्रिम जनमत। इन परिस्थितियों में मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ हमें चेतावनी देती हैं कि यथार्थ को पहचानना आसान नहीं; सत्ता निरंतर उसके ऊपर चमकीले आवरण चढ़ाती रहती है। इसलिए कविता का कार्य केवल सौंदर्य निर्माण नहीं, वैचारिक अनावरण भी है।

आज जब 'राष्ट्र', 'विकास', 'समृद्धि', 'सुरक्षा' जैसे शब्द राजनीतिक प्रचार के शक्तिशाली औजार बन चुके हैं, मुक्तिबोध की कविता इन शब्दों के भीतर छिपे वर्गीय और वैचारिक हितों को पहचानने की आलोचनात्मक दृष्टि देती है। वह हमें यह भी सिखाती है कि विद्रोह का अर्थ अराजकता नहीं, बल्कि सच के पक्ष में खड़े होने का नैतिक साहस है।

जनपक्षधरता और नैतिकता

मुक्तिबोध की कविताओं में जनपक्षधरता कोई भावुक सहानुभूति नहीं, बल्कि एक अर्जित नैतिक स्थिति है। वे जन-जीवन की पीड़ा को देखकर केवल करुणा व्यक्त नहीं करते, बल्कि उस पीड़ा के सामाजिक कारणों को समझते हैं और बौद्धिक वर्ग की जिम्मेदारी तय करते हैं। उनकी कविता में 'जन' कोई अमूर्त इकाई नहीं; वह श्रमिक, उपेक्षित, शोषित, संघर्षरत मनुष्य है। यही कारण है कि उनका काव्य नैतिकता को भी वर्गीय यथार्थ और सामाजिक न्याय से जोड़ता है।

यह नैतिकता धार्मिक उपदेश या उदार मानवीयता तक सीमित नहीं। यह प्रश्न करती है कि कवि, आलोचक, शिक्षक, पत्रकार, लेखक और विचारक अपने समय की अन्यायपूर्ण संरचनाओं के प्रति क्या रवैया अपनाते हैं। यदि वे मौन हैं, तटस्थ हैं, या सुविधा के साथ हैं, तो मुक्तिबोध की दृष्टि में वे दोषमुक्त नहीं। इसीलिए उनकी कविता आज के सांस्कृतिक कर्मियों के लिए दर्पण का काम करती है।

भाषा, बिंब और संरचनात्मक जटिलता

मुक्तिबोध की भाषा बहुपरत है। उसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दावली, बोलचाल की ऊर्जा, दार्शनिक संकेत, राजनीतिक अर्थच्छवियाँ और दृश्यात्मक तीव्रता एक साथ मिलती हैं। यह भाषा कई बार 'घनी' और 'असुविधाजनक' लगती है, क्योंकि वह पाठक को तैयार अर्थ नहीं देती। वह पाठक से सक्रिय भागीदारी चाहती है। मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में बिंब अक्सर भयावह, टूटे हुए और विचित्र हैं—पर यही विचित्रता आधुनिक जीवन की विडंबना को व्यक्त करती है। उदाहरणतः अँधेरा, गलियाँ, टेढ़ा चाँद, ब्रह्मराक्षस, खाक-धूल, रक्त, मठ-गढ़—ये सभी प्रतीक अपने आप में बहुअर्थी हैं। वे सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और वैचारिक स्तरों पर काम करते हैं। उच्च प्रभाव वाले जर्नल की दृष्टि से यह इंगित करना महत्त्वपूर्ण है कि मुक्तिबोध की जटिल भाषा सामाजिक जटिलता की काव्यात्मक समकक्ष है; वह सजावटी आधुनिकतावाद नहीं, बल्कि आलोचनात्मक आधुनिकता का रूप है।

मुक्तिबोध और प्रतिरोध की सौंदर्यशास्त्र

मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ प्रतिरोध की ऐसी सौंदर्यशास्त्र निर्मित करती हैं जिसमें कुरूप, अँधेरा, असंगति, बेचैनी और टूटन भी सौंदर्यात्मक अर्थ ग्रहण करते हैं। पारंपरिक सौंदर्य-दृष्टि जहाँ सामंजस्य, मधुरता और संतुलन को महत्त्व देती थी, मुक्तिबोध वहाँ विसंगति, तनाव और अपूर्णता को भी कलात्मक मूल्य में बदल देते हैं। इसका कारण यह है कि उनका समाज स्वयं असामंजस्यपूर्ण है। इसलिए उनके यहाँ सौंदर्य भी संघर्ष से जन्म लेता है।

यह सौंदर्यशास्त्र समकालीन प्रतिरोधी साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण है। जब यथार्थ हिंसक, विभाजित और असुरक्षित हो, तब कलात्मक ईमानदारी का अर्थ है कि साहित्य उसकी कठिनाई को वहन करे। मुक्तिबोध यही करते हैं। इस दृष्टि से वे केवल प्रगतिशील या नई कविता के कवि नहीं, बल्कि प्रतिरोध की आधुनिक भारतीय सौंदर्य-दृष्टि के निर्माताओं में हैं।

आलोचनात्मक सीमाएँ और पुनर्पाठ की आवश्यकता

यद्यपि मुक्तिबोध की कविता अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, फिर भी उनके पाठ को नए संदर्भों में पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। उदाहरणतः स्त्रीवादी दृष्टि, दलित दृष्टि, उपaltern अध्ययन और पारिस्थितिकी के संदर्भ में उनके काव्य का पुनर्पाठ किया जा सकता है। उनकी कविता का केंद्र मुख्यतः वर्ग, बौद्धिकता और सामाजिक-राजनीतिक विघटन है; किंतु आज की बहुस्तरीय पहचान-राजनीति के संदर्भ में उनके काव्य की नई व्याख्याएँ संभव हैं। इसके बावजूद उनकी मूल चिंता—अन्याय, शोषण, बौद्धिक बेईमानी और जन-विरोधी सत्ता—आज भी केंद्रीय है।

निष्कर्ष

मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ आधुनिक हिंदी कविता की ऐसी उपलब्धि हैं जिनमें सामाजिक यथार्थ और विद्रोह का अद्वितीय संश्लेष मिलता है। उनके यहाँ यथार्थ केवल बाहरी दृश्य नहीं, बल्कि इतिहास, वर्ग, सत्ता, भय, नैतिकता और आत्मसंघर्ष से निर्मित बहुपरत अनुभव है। उनकी कविता व्यवस्था की अमानवीयता को उद्घाटित करती है, मध्यवर्गीय बौद्धिकता की आलोचना करती है, जन-जीवन की पीड़ा को पहचानती है, और परिवर्तन के लिए आवश्यक नैतिक साहस की खोज करती है। विद्रोह उनके यहाँ सतही उग्रता नहीं, बल्कि गहरी आत्मालोचना, वैचारिक स्पष्टता और जनपक्षधर प्रतिबद्धता से उत्पन्न होता है। 'अँधेरे में' जैसी कविता आज भी इसलिए प्रासंगिक है कि हमारा समय भी अनेक प्रकार के अँधेरों से घिरा है—राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और मानसिक। 'ब्रह्मराक्षस' इसलिए आज भी जीवित रूपक है कि बौद्धिक वर्ग का अवसरवाद और जन-विमुखता समाप्त नहीं हुई। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' इसलिए समकालीन है कि आधुनिकता का वादा अब भी विकृत रूपों में हमारे सामने उपस्थित है। इस प्रकार मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ हमारे समय को पढ़ने, उससे असहमति दर्ज करने और प्रतिरोध का नैतिक आधार निर्मित करने में मदद करती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध की लंबी कविताएँ केवल हिंदी साहित्य की धरोहर नहीं, बल्कि भारतीय समाज के आत्मपरीक्षण की अनिवार्य पाठशाला हैं। वे हमें सिखाती हैं कि सच को पहचानने के लिए अँधेरे में उतरना पड़ता है, स्वयं को कटघरे में खड़ा करना पड़ता है, और यदि आवश्यक हो तो "अभिव्यक्ति के सारे खतरे" उठाने पड़ते हैं। यही मुक्तिबोध की कविता का वर्तमान सामाजिक अर्थ है, और यही उसका विद्रोही सौंदर्य।

संदर्भ सूची

1. अज्ञेय (सं.). (1943). तार सप्तक. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ/प्रासंगिक संस्करण।
2. अडोर्नो, थियोडोर. (1973). Negative Dialectics. New York: Continuum.
3. अशोक वाजपेयी. (2002). कवि कह गया है. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
4. बच्चन सिंह. (1989). नई कविता का इतिहास. इलाहाबाद: लोकभारती.
5. बेंजामिन, वाल्टर. (1968). Illuminations. New York: Schocken Books.
6. ईगलटन, टेरी. (1976). Marxism and Literary Criticism. London: Methuen.
7. फैनों, फ्रांत्ज़. (1963). The Wretched of the Earth. New York: Grove Press.
8. ग्राम्शी, एंतोनियो. (1971). Selections from the Prison Notebooks. New York: International Publishers.
9. जेम्सन, फ्रेडरिक. (1981). The Political Unconscious. Ithaca: Cornell University Press.
10. लुकाच, जॉर्ज. (1963). The Meaning of Contemporary Realism. London: Merlin Press.
11. मार्क्स, कार्ल. (1977). Capital, Vol. 1. New York: Vintage. (Original work published 1867)
12. मार्क्स, कार्ल, एवं एंगेल्स, फ्रेडरिक. (1976). The Communist Manifesto. Beijing/Progress Publishers. (Original work published 1848)
13. मुक्तिबोध, गजानन माधव. (2007). एक साहित्यिक की डायरी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. (मूल प्रकाशन 1964)
14. मुक्तिबोध, गजानन माधव. (2009). नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
15. मुक्तिबोध, गजानन माधव. रचनावली, विभिन्न खंड. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

16. मैनेजर पांडेय. (1993). साहित्य और इतिहास-दृष्टि. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
17. नामवर सिंह. (1964). कविता के नये प्रतिमान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
18. नंदकिशोर नवल. (1980). मुक्तिबोध: ज्ञान और संवेदना. पटना/नई दिल्ली: प्रासंगिक संस्करण.
19. रामविलास शर्मा. (1978). नई कविता और अस्तित्ववाद. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
20. रेमंड विलियम्स. (1977). Marxism and Literature. Oxford: Oxford University Press.
21. सईद, एडवर्ड. (1978). Orientalism. New York: Pantheon.
22. विजयदेवनारायण साही. (1985). हिंदी कविता पर एक बहस. नई दिल्ली: प्रासंगिक संस्करण.
23. विश्वनाथ त्रिपाठी. (1991). हिंदी आलोचना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
24. शंभुनाथ. (सं.). आधुनिक हिंदी कविता पर आलोचनात्मक लेख. नई दिल्ली: प्रासंगिक संस्करण.
25. हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं उत्तरवर्ती आलोचना-परंपरा से संबंधित मानक ग्रंथ, आधुनिक हिंदी साहित्य-विमर्श में उद्धृत संस्करण।